IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, April 2024

भारतीय संस्कृति एवं नारी में महादेवी का चिन्तन

नीला देवी[1] व डॉ0 देशपति सार्मे[2]

शोधार्थी हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, पुष्पराज गढ़ ,(म0 प्र0)

शोध सारांश –

महादेवी वर्मा ने यदि सास–बहू के भारतीय परिवारगत रूप की चर्चा भी खुलकर अपने निबन्धों में की होती तो निबन्ध की सार्थकता, भारतीय नारी के जीवन के इस पक्ष पर भी प्रकाशमयी बन जाती कि सास–बहू के रूप में भारतीय नारी किन–किन यातनाओं को सहती है। इस पक्ष का स्पर्श न करना महादेवी वर्मा का नारी–संसार के प्रति 'स्वंय' का सहज स्निग्ध भाव है। इस संग्रह में महादेवी वर्मा का पुरूष –सत्तात्मक समाज के प्रति तीखा आक्रोश साकार हुआ है। नारी के विविध रूपों–विधवाओं, परित्यकताओं एवं श्रमिकाओं के दुःखद जीवन–चित्रों की ये कड़ियाँ प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के नारी–जीवन की शृंखला बाँधे हुए है–'शृंखला की कड़ियाँ' में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक की नारी समस्याओं पर चेतन तूलिका के चित्र उभरे है और धनी मध्यम तथा निर्धन वर्ग की नारियों की आकृतियाँ साकार हो गयी है'। लेखिका ने विशेषकर दो प्रकार की नारियों का उल्लेख किया है। एक वे जिन्हे उपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का ज्ञान नही है और दूसरी वे जो आज के युग में पुरूष–समाज की गुणावगुण में केवल समता करने की अभिलाषा रखती है।

मुख्य शब्द – भारतीय, संस्कृति, नारी, महादेवी वर्मा, चिन्तन, मानव जाति आदि।

प्रस्तावना –

भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ उसी का दायभाग नहीं, वे मानव–जाति का भी उत्तराधिकार हैं। अतः जिस प्राकृतिक परिवेश में ये प्राप्त हो सकीं, उसके प्रति तीव्र जिज्ञासा स्वाभाविक है। पृथ्वी, पर्वत, नदी, वन, समुद्र आदि का संघात है और इस संघात के प्रत्येक रूप को वेदकालीन मनीषा ने इतनी सजीव चित्रमयता दी है कि हमे वे परिचित ही नहीं आत्मीय जान पड़ते हैं।

हमारे और हमारे वेदकालीन पूर्वजों के बीच मे समय का पाट कितना विस्तृत है, यह विभिन्न अनुमानों का विषय रहा है। विदेशी शोधकर्ता अपने पूर्वग्रह के कारण इसे 3500 वर्ष से दूर नही ले जा सके, क्योंकि बाइबिल के अनुसार सृष्टि रचना की अवधि ही 7500 वर्ष के लगभग है।

अपने देश में अपौरूषेय कहकर वेदवाङ्गमय सम्बन्धी जिज्ञासा ही कुण्ठित कर दी गयीं। इतना ही नहीं उसे ऐसी अदभुत पवित्रता से आच्छादित कर दिया, जो दूसरो को पवित्र करने के स्थान में स्वयं अपवित्र से हो सकती है। अतः हर क्षण उसकी पवित्रता की रक्षा–में सन्न प्रहरियों ने उसे असूर्यपश्य बना डाला। जब विदेशियों ने इस लक्ष्मण रेखा को पार कर लिया, तब कुछ भारतीय विद्वानों ने भी साहस किया।

जिन्होने विदेशियों का अन्धानुकरण मात्र न करके वेदवाङ्गमय के सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र मत की तर्कसरणि द्वारा स्थापना की है, उनमें लोकमान्य तिलक प्रमुख है। वे खगोल ज्योतिष के सिद्धान्तों के आधार पर वेदवाङ्गमय, ब्राहमण ग्रन्थ आदि के रचनाकाल के विषय में किन्ही निष्कर्षो तक पहुँचे है। ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण–काल में कृतिका नक्षत्र प्रथम माना जाता था

और उसी में दिन–रात बराबर होते थे। आजकल सूर्य के अश्विनी नक्षत्र में रहने पर यह स्थिति होती है। इस परिवर्तन के लिए 4500 वर्षों का दीर्घ समय लगा दिया था।

वेदों के रचनाकाल में मृगशिरा नक्षत्र ही प्राथमिकता पाता था और सूर्य के इसी नक्षत्र में रहने पर दिन–रात बराबर होते थे। मृगशिरा ही में वसन्त–सम्पात होता था, परन्तु यह स्थिति 6500 वर्ष पूर्व ही सम्भव थी'। इसी प्रकार के अन्तः साक्ष्य के आधार पर कुछ मन्त्रों का समय 19000 वर्ष पूर्व तक पहुँच गया है। भूगर्भ शास्त्र के अनुसार पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि के परिवर्तन के आधार पर भी कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हो सके है।

ऋग्वेद में पूर्व–पश्चिम समुद्रों का भी उल्लेख मिलता है और चार समुद्रो का भी ।

उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ।

– ऋग्वेद–10–136–5

(मुनि) दोनों समुद्रों के पास जाते हैं– एक वह जो पूर्व में है और दूसरा वह जो पश्चिम में हैं।

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्य सहसिणः

ऋग्वेद –9–33–6

हे सोम ! समृद्धि से पूर्ण चारों समुद्र और सहस्रों कामनाएँ हमे प्रदान करते हैं केवल समुद्र का उल्लेख भी अनेक सूक्तों में अनेक बार आया है। सौ अरित्र वाली नावों के वर्णन भी कम नहीं।

य ईखंयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रम् वर्णम्।

मरूद्भिरग्न आ गहि।

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रओजसा

मरूद्भिरन आ गहि।

ऋग्वेद 2–19–7

हे अग्ने! बादलों का संचालन करने वाले और जल को समुद्र में गिराने वाले मरूतों के साथ आइए। हे अग्ने! सूर्य किरणों के साथ व्याप्त और समुद्र को अपने बल से आन्दोलित करने वाले मरूतों के साथ आइए' ।

"अनारम्भतो तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।

यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रा नावमतस्थिवांसम्।।"

ऋग्वेद – 1–116–5

हे अश्विद्वय! निराधार समुद्र में पड़े हुए भुज्यु को तुमने सौ डाँडो वाली नाव सहित गृह पहुँचा दिया। यह तुम्हारा पराक्रम है।

ऋग्वैदिक काल के चार समुद्रों मे से, उत्तरी समुद्र की स्थिति, हिमालय के उपरान्त वन्हीक और फारस के उत्तरी भाग से तुर्किस्तान के ऊपर पश्चिम तक रही होगी, जिसके अवशेष रूप में कृष्णसागर, कश्यपहृद, अराल और वल्काशछद आदि की स्थिति है। समुद्र के उत्तर की भूमि ध्रुवप्रदेश तक फैली होगी।

दक्षिण समुद्र के अवशेष राजपूताने की सांभर झील और मरू प्रदेश में मिलते है। पश्चिमीय समुद्र अरब सागर से मिला होगा, और पूर्वीय समुद्र की स्थिति हिमालय की तलहटी से लेकर आसाम तक रही होगी। जिस प्राकृतिक कारण से हिमालय का जन्म हुआ, उसी से समुद्र भी हटे होंगे फिर उसी क्रम से अधिक जल लानेवाली नदियों की यात्रा दीर्घ हो गयी होगी, और कम जलवाली सिकता में खो गयी थी' ।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, April 2024

भूगर्भ वेताओं के अनुसार इस प्रकार के परिवर्तन में 25000 वर्ष से लेकर 75000 वर्ष तक लग सकते है। ऐसी स्थिति में वैदिक साहित्य के निर्माण काल के सम्बन्ध में 'न इति न इति' कहना ही उचित होगा। समय–सागर का यह अमाप विस्तार तब हमें विस्मय के चरम् बिन्दु तक पहुँचा देता है, जब हम अनुभव करते हैं कि इसकी हर लहरी हमारी चिर परिचित है। भौगोलिक रूपान्तरों ने भारतभूमि की तात्विक एकता को खण्डित नही किया है, इसी से वर्तमान प्राकृतिक रूप अतीत रूपों प्रकार सम्बद्ध है, जिस प्रकार हम अपने पूर्वजों से।

हिमालय के लिए हिमवत् नाम ऋगवेद और अथर्ववेद में अनेक बार है। मूजवत पर्वत का जो उल्लेख ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि वह गांधार प्रदेश में स्थित रखता था और उसके भीतर रूद्र का स्थान था। महाभारत में–

"गिरे हिमवन्तः पृष्ठे मुंजवान् नाम पर्वतः ।
तप्यते तत्र भगवान् तपो नित्यमुमापति'।।"

कहकर इसे स्मरण किया है। तैत्तिरीय आरण्यक में तीन पर्वतों का उल्लेख है।

'सुदर्शने क्रौचे मैनागे महागिरौ ।

पुराणों तथा महाभारत के अनुसार मैनाक कैलाश से उत्तर है और इसके निकट बिन्दुसागर सरोवर गंगा का उद्गम स्थल है।

वृहत्संहिता के अनुसार क्रौंच पर्वत मानसरोवर और कैलाश से दक्षिण है और इसी के रन्ध्र या दर्रे से हंस मानसरोवर पहुँचते हैं।

हिमालय की तीन श्रेणियाँ बाहुओं के समान पूर्व और पश्चिम छोरों तक फैली हुई हैं। बाहरी शृंखला में शिवालिक की श्रेणियाँ है दूसरी में कश्मीर, काँगड़ा कूर्मांचल आदि हैं और फिर महाहिमवन्त की श्रेणी में नन्दा देवी, त्रिशूली, गौरीशंकर आदि उन्नत शिखर हैं इसी श्रेणी में तुंगनाथ बद्री केदार आदि का स्थिति है, वही कुबेर की अलकापुरी बसी है।

इस श्रेणी में 18000 से लेकर 30000 फीट तक ऊँचे हिमावृत्त शिखर है, पूर्व की श्रेणियों में लोहित क्षेत्र और ब्रह्मपुत्र की घाटी है। पश्चिमी सीमान्त के कृष्णगिरी और शर्यणवत् क्षेत्र का ज्ञान भी ऋग्वेद के ऋषि को था। संसार के किसी पर्वत की जीवन कथा इतनी रहस्यमयी न होगी, जितनी हिमालय की है। उसकी हर चोटी हर घाटी हमारे धर्म, दर्शन, काव्य से नहीं हमारे जीवन के सम्पूर्ण निःश्रेयम् से जुड़ी हुई है।

जिस प्रकार गंगा यमुना और अन्तःसलिला सरस्वती के बिना हमारे महादेश के सजल पर रहस्यमय हृदय की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार अभ्रंकष हिमालय के बिना देश के उन्नत मस्तक की कल्पना सम्भव नहीं है। संसार के किसी अन्य पर्वत को मानव की संस्कृति काव्य, दर्शन, धर्म आदि के निर्माण में ऐसा महत्व नहीं मिला है, जैसे हमारे हिमालय को प्राप्त है। वह मानो भारत की संश्लिष्ट विशेषताओं का ऐसा अखण्ड विग्रह है जिस पर काल कोई खरोंच नहीं लगा सका। वस्तुतः हिमालय भारतीय संस्कृति के हर नये चरण का पुरातन साथी रहा है। भारतीय जीवन उसकी उजली छाया में पलकर सुन्दर हुआ है, उसकी शुभ्र ऊँचाई छूने के लिए उन्नत बना है उसके हृदय से प्रवाहित नदियों मे धुलकर निखरा है।

प्राकृतिक परिवेश में परिवर्तन स्वाभाविक ही रहते है। जहाँ अतीतकाल में गम्भीर वेगवती नदियां थी, वहाँ जलते ताम्रपत्र जैसा दृष्टि को झुलसा देने वाला मरू का विस्तार है, जहाँ अतल समुद्र था, वहाँ सम–विषम समतल गर्त निकल आये है। ऋतुएँ बदल गयी वनस्पतियों में परिवर्तन हो गया है और ग्रह–नक्षत्रों की गति में अन्तर आ गया है। परन्तु वैदिक युग से अधुनातन युग तक हिमालय से भारतीय जीवन का रागात्मक सम्बन्ध उत्तरोत्तर गहरा ही होता रहा है। यह गहराई इस सीमा तक पहुँच गयी है कि हिमालय को कभी न देख पानेवाला भी उससे दूरी का अनुभव नही करता है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, April 2024

जीवन के अतल समुद्र से अपनी विशिष्ट मेधा के साथ उठने वाले वैदिक मानव के समान ही, पृथ्वी के किसी कम्पन के कारण जलराशि से हिमालय भी ऊपर उठा होगा। पृथ्वी और पर्वत दोनों मे वह विस्फोट–जनित कम्पन कुछ समय शेष रही होगी, इसी से ऋषि कहता है।

"यः पृथिवीं व्यथमानादृं दृद्यः पर्वता–प्रकुपिता अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममेवरीयो यो द्यामस्तभ्नास जनास इन्द्र ।।"

–ऋग्वेद–2–12–2

(पृथ्वी को दृढ़ किया, जिसने क्षुब्ध पर्वतों को शान्त किया, जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष को फैलाया और जिसने आकाश को स्थिर किया। हे जनो! वह इन्द्र है) पर्वतों के पंखों की पौराणिक कथा के मूल में भी यही कम्पन रही होगी।

किसी भी देश के मानव–समूह के पास वैदिक वाष्मय के समय प्राचीन और समृद्ध वाङ्गमय नही है। इतना ही नहीं किसी भी भूखण्ड का मानव गर्व के साथ वह घोषणा नहीं कर सकता है।

"माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्याः " ।

–अथर्ववेद

आश्चर्य नहीं कि इस प्रकार कहने वाले को पर्वत, वन, नदी आदि सहोदर–सहोदराएँ जान पड़े।

"गिरयस्ते पर्वतः हिमवन्तोऽरण्यम् पृथिवी स्योनमस्तु"

– अथर्ववेद

(हे पृथ्वी ! तेरे पर्वत, तेरे हिमावृत्त शैल, तेरे अरण्य सुखदायक हों।)

धरती का सौन्दर्य उन्हें इतना प्रिय था कि वे उसे अनन्तकाल तक देखते रहने की कामना करते थे।

"यावत् तेभि पश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्में चक्षुर्मामेष्टोत्तरामुत्तरां समाम्।।"

–अर्थवेद

(हे भूमि! प्रकाशित सूर्य के साथ जब तक तेरी ओर देखता रहूँ, तब तक वर्ष वर्षान्तर तक मेरी दृष्टि क्षीण न हो।) आज के वैज्ञानिक युग में, जब मनुष्य पृथ्वी से सब कुछ लेकर भी उसे नष्ट करने के साधन खोजता रहता है, वैदिक मानव की यह भावना विस्मय जनक है'।

"उदीराणा उतासीनास्तिष्ठतः प्रक्रामन्तः
पदश्यां दक्षिण सत्याश्यां मा व्यथिमही भूम्याम् ।
मा ते मर्म विभ्रग्वरि मा ते हृदयमर्पिणम्"।

–अथर्ववेद

(उठते हुए, बैठते है, खड़े हुए और दक्षिण वाम पैरों से बढ़ते हुए हम भूमि को व्यथा न पहुँचाएँ । हे पवित्र करने वाली मैं तेरे हृदय को आघात न पहुचाऊँ)

परन्तु इतनी भावकुता उन्हें बल से विरक्त नहीं बना देती ।

"अजीतोऽहता अक्षतोऽध्यष्ठां पृथ्वीमहम"।

(मैं अपराजित, अक्षर अमर होकर पृथ्वी पर अधिष्ठित रहूँ।)

"सानो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे"।

(वह पृथिवी हमारे सर्वोत्कृष्ट राष्ट्र में ओज और शक्ति उत्पन्न करें।)

हिमवन्त और भारत भूमि के प्रति इसी गम्भीर अनुराग का संस्कार लेकर युग—युगान्तर तक नवीन पीढ़ियाँ आती रही है। ऋग्वेद के ऋषि का हिमवन्त आदि कवि वाल्मीकि के युग तक पहुँचते—पहुँचते शैलेन्द्र का विशेष व्यक्तित्व पा लेता है। महाभारतकार उसे स्मरण ही नहीं करता, प्रत्युत हिंसाजनित, विजय से क्षुब्ध पाण्डवों को उसके हिमशीतल अंक में समाधिस्थ कर देता है।

गहन हरित कान्तार, सरिताओं की नील—रजत, शिराजाल, विस्तृत बहुरंगी, समतल विविध वृक्ष पशु—पक्षियों की संस्कृति आदि भारतीय समाज के साथ—साथ समय की तरंगो पर झूलते, तिरते, निखरते चले आ रहे है। वैदिककाल के अश्वत्थ (पीपल) शमी (छंकुर) शिशंपा (शीशम) शाल्मलि, पलाश आदि अनबोये अनसींचे आज भी ग्रामों की सीमा और नगर मार्गो के प्रहरी बने हुए हैं। इक्षु मधु आज भी सुलभ है। यव, व्रीहि, गोधूम आदि धान्यों की हरितिमा में आज भी धरती का अंचल लहराता है।

पशुओं में गो, अश्व, मेष, महिष, कुक्कुर आदि नित्य परिचित ग्राम पशुओं से लेकर विजनवासी हस्ति और मृग, कृष्णसार कस्तूरी मृग आदि तब सब इस धरती के पूर्ववत् संगी है। इसी प्रकार अनदेखे हंस, क्रौंच, चक्रवाक से लेकर प्रत्यक्ष शुक, शकुनि आदि विविध पक्षी—जगत् से और वृश्चिक सर्प जैसे दंशनप्रिय जन्तुओं से हमारे जीवन का चिरपरिचय है।

दादुर वैदिक ऋषि को ही वेदपाठियों का स्मरण नहीं करता है, आज भी नदी पोखरों में स्वर—लहरी, उठती—गिरती रहती है। गो के प्रति भारतीय की जो संस्कार जन्य श्रद्धा है। उसका अंकुर ऋग्वेद के प्रसिद्ध गो—सूक्त में खोजा जा सकता है।

"आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरूषपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरूपसों दुहाना।।"

ऋग्वेद —6—28—1

गौयें हमारे गृह आवे हमारा मंगल साधन करें, वे हमारे गोष्ठ में विराजें, हमें आनन्द दें, वे प्रजावती हो, विविध सुन्दर वर्णवाली गौयें ऊषा काल में इन्द्र के लिए दुग्ध प्रदान करें। ऋषि इस उपयोगी पशु की पूजा—अर्चना करके कर्तव्य समाप्त नहीं कर देता वरन् उसके सुखपूर्वक जीवन का भी व्यवस्था करता है'।

"प्रजावती सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रयाणे पिवन्ती।
मा वः स्तेन ईशत माधशंसः परि वो हेती रूद्रस्त वृज्याः"।।

हे प्रजावती गौओं! तुम शोभन जौ का भक्षण करो। सुन्दर प्रपानक (जलाशय) में निर्मल जल पियो। तुम्हे तस्कर कष्ट न पहुँचाएँ हिंसक पशु आक्रमण न करें, चोट पहुँचाने वाले आयुध तुम्हे स्पर्श न करें।

"गौ को अदिति स्वरूप मानकर उसे अघन्या कहा गया"।

गौ मां हिंसीरदिति विराजम्—अदिति रूप गो की हिंसा मत करो। गोघातक प्राणदण्ड का भागी होता था।

उपयोगितावाद और दर्शनीयता की दृष्टि से अश्व का जो उत्कर्ष हुआ था, वह भी विविध और विस्मयजनक है। वह त्वरा और ओज का ही प्रतीक नहीं है वरन् प्रकृति के रौद्र, चंचल और शान्त संयमित दोनो रूपा का वाहक है। पर्वतों को कम्पित करने वाले मरूतों का वाहन भी अश्व और ऊषा, सूर्य आदि को ऋतमार्ग मे लाने वाले रथ के वाहक भी अश्व है। उनके चित्र वर्ण उनके ओज, उनके हिरण्य साज और दीप्ति वल्गाओ के वर्णन स्पष्ट और काव्यात्मक हैं।

क्रमशः स्पष्ट प्रकृति चित्रों का स्थान ऐसे भावचित्र ले लेते है जिनमें सूक्ष्म सौन्दर्य बोध के साथ किसी शाश्वत अलक्ष्य ऋत् का भी संकेत प्राप्त होने लगता है'।

"एषा दिवों दुहिता पत्यदर्शि।
ज्योतिर्वसाना सपना पुरस्यात् ।।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु ।

प्रजानतीय न दिशो मिनाती ।। "

ऋग्वेद–1–124–3

यह आकश की पुत्री आलोकवसना ऊषा प्रत्यक्ष उदित हुई। यह ऋत का अनुसरण करती हुई सब दिशाओ का ज्ञान रखती है।

व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्ध के परिचायक वरुण सूक्त है, जिनमें आगामी युगों में विकास पाने वाले रहस्यवाद के अंकुर स्पष्ट है।

"क्वत्यानि नौ सख्या वभूवुः सचावहे यद्वृकं पुराचित ।
वृहन्तं मानं वरूण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ।। "

–ऋग्वेद–1–7–88–5

हे वरण योग्य ! हमारा वह पुरातन सख्या क्या हुआ? पूर्व काल में जो हमारी मित्रता हुई थी हम उसी का निर्वाह करें। हे महान् ! स्वामी तुम्हारे सहस्रों द्वारवाले गृह में मै आऊँगी।

प्रकृति की जिस विविधता में उन्हे अनेक देवो का बोध हुआ था, उसी मे उन्होने एकत्व की अनुभूति प्राप्त की'–

"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्ये शानों पदन्नेनाति रोहिति।।"

(ऋग्वेद– 10–10–2)

सब कुछ वह पुरूष ही है–ये जो भूत और जो होने वाले है। वह अमृत का स्वामी और अन्न से सर्वोपरि है।

प्रकृति के उग्र रूपों के प्रति भी उनकी रागात्मिका वृत्ति केवल भय की नहीं थी, क्योंकि उस स्थिति में मानव केवल अन्धविश्वास के अन्धकार का बन्दी हो जाते है। उग्र रूद्र रूपों में सौन्दर्य और शिवत्व की अनुभूति केवल भीति या आतंक से सम्भव नही है।

निष्कर्ष –

महादेवी की संवेदना का प्रसार समस्त मानव समाज में व्याप्त है। ग्रामीण पात्रों की संवेदना महादेवी जी के संस्मरणों में साकार हो उठी है। सम्पूर्ण समाज पर दृष्टि रखते हुए भी महादेवी जी की करूणा ग्राम की उपेक्षित–तिरस्कृत एवं दीन–हीन विफल स्त्रियों पर गई है। ग्रामीण, आदिवासी, श्रमिक व मजदूर वर्ग भी नारियों की समस्याओं पर उनकी लेखनी अत्याधिक चली है। उनके समस्त संस्मरण उनकी गहरी संवेदना के प्रतीक है। 'स्मृति की रेखाएँ' में वस्तुतः व्यंग्य, वेदना और विद्रोह की त्रिवेणी है, इसमें हास्य–व्यंग्य आवेष्टित करूणाक्रांत जीवन का यथार्थ प्रत्यय बोध है। लेखिका ने इसमें मूक मुखर प्राणियों की एक जन्तुशाला सी बसायी है। उसके ये चरित नायक यद्यपि स्नेही श्रद्धालु, सेवादानी, त्यागी एवं परोपकारी मानव है पर समाज ने इन्हे मानवता का विलोम, प्रतिरूप या अपरूप जीवनवाला 'लघुमानव' बना दिया है। ये सब वस्तुतः सन्ताप उसकी कड़ियाँ है, जिनसे यह शृंखला लौहवती है, अट्ट है, ऐसा इसलिए कि माँ माँ–बहिन–पत्नी आदि के स्वरूप को तो वह त्याग नही सकती, वह उसके देह एवं आत्मा के साथ जायेंगे ही नही मरणोपरान्त भी एक दो सदी तक जीवित रहेगे। उसको प्राप्त अभिशाप सन्ताप, अत्याचार आदि की कड़ियाँ उसकी स्मृति ताजा रखेंगी।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.53
Volume 4, Issue 2, April 2024

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]. महादेवी वर्मा, हिमालय राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

[2]. महादेवी वर्मा, रश्मि, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद सप्तम् आवृत्ति 1983

[3]. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद पहला पेपर बैक संस्करण 2008

[4]. महादेवी वर्मा, रश्मि, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद सप्तम् आवृत्ति 1983